13_satendra_Layout 1 6/3/2015 3:54 PM Page 213

राजनीतिक अध्ययन में एथ्नॉग्राफ़ी की भूमिका

सतेंद्र कुमार

राजनीति की जटिल संरचना समझने के लिए आम तौर पर राजनीति-विज्ञानी बारीक़ और गहन अध्ययन-विश्लेषण के बजाय बृहत्तर मॉडल अथवा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर तुलना एवं संख्यात्मक विश्लेषण को ज़्यादा वरीयता देते हैं।[1] कई दफ़ा तो तुलना और संख्या का यह आग्रह इस सीमा तक चला जाता है कि नगरीय मुहल्लों अथवा ग्रामीण स्तर की राजनीतिक घटनाओं, प्रक्रियाओं और बदलाव आदि के अध्ययन में भी सर्वेक्षण और तुलनात्मक विधि का इस्तेमाल किया जाने लगता है।[2] यह एक एकांगी नज़रिया है जो राजनीति के व्यष्टिपरक तथ्यों और लोगों की राजनीतिक समझ से

[1] इस संदर्भ में पॉल ब्रास तथा मायरॉन वीनर एक विरल उदाहरण पेश करते हैं. पॉल ब्रास ने उत्तर प्रदेश की राजनीति का दीर्घकालीन अध्ययन करने के लिए केस-स्टडी पद्धति अपनाई थी.

[2] अनिरुद्ध कृष्ण (2003) : 1171-1193.

13_satendra_Layout 1 6/3/2015 3:54 PM Page 214

दूरी बना कर चलता है, जबकि सच्चाई यह है कि किसी व्यक्ति अथवा संस्थान का वास्तविक समय में प्रत्यक्ष, सघन और दीर्घकालीन अवलोकन राजनीतिक अध्ययन के कई विशिष्ट पहलू उजागर करने की क्षमता रखता है। इस तरह एथ्नॉग्राफ़ी पर आधारित दृष्टिकोण से पारम्परिक राजनीतिक अध्ययन की धाराओं को प्रश्नांकित करते हुए सिद्धांत-रचना की एक नयी ज़मीन तैयार हो सकती है।

इस लेख के ज़रिये मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि भारतीय राजनीति के अध्येताओं को एथ्नॉग्राफ़ी का उपागम (एप्रोच) किस तरह एक उपयोगी परिप्रेक्ष्य प्रदान कर सकता है। यहाँ मैं एथ्नॉग्राफ़ी-आधारित उपागम के तीन लाभों की चर्चा करना चाहूँगा। पहला, एथ्नॉग्राफ़ी राजनीति के सूक्ष्म पहलुओं को समझने की कुंजी है। दूसरा, यह एक ऐसा उपागम है जो किसी अनसुलझे और जटिल परिदृश्य के सूत्रों को सूचनादाताओं, विचारधाराओं और किसी समूह विशेष के अंदरूनी दृष्टिकोण के आधार पर समझने का प्रयास करता है। इस अर्थ में एथ्नॉग्राफ़ी एक ऐसी पद्धति है जिसके ज़रिये किसी व्यक्ति के सोच और आशयों तथा उसके व्यवहार व कार्यों की पारस्परिक कड़ियों को समझा जा सकता है। व्यक्तिगत साक्षात्कार और समूह परिचर्चा के बरअक्स एथ्नॉग्राफ़ी अध्येता को यह अवसर प्रदान करती है कि वह किसी व्यक्ति और समूह के जीवन का अलग-अलग स्थितियों में लम्बे समय तक अवलोकन कर सके। तीसरा, एथ्नॉग्राफ़ी का उपागम व्यक्ति से केवल सवाल पूछने में यक़ीन नहीं करता बल्कि वह उसकी गतिविधियों के अवलोकन को भी बराबर का महत्त्व देता है। लोगों के रोज़मर्रा के जीवन में पैठ कर शोध करने से उनकी कथनी और करनी के अंतर को समझने में मदद मिलती है। एथ्नॉग्राफ़ी का मुख्य उद्देश्य किसी समूह एवं संस्कृति की आंतरिक संरचनाओं और उनके अर्थों को समझना होता है। मेलिनोवॉस्की इसे-देशी अथवा लोगों के विचारों को समझना कहते हैं।[3] इस विधि का एक आनुषंगिक उद्देश्य समूह विशेष की आंतरिक गतिशीलता, उसके कामकाज के ढर्रे, संस्कृति एवं आस-पास के परिदृश्य को समुचित ढंग से चित्रित करना भी होता है। समाज-विज्ञान की शब्दावली में एथ्नॉग्राफ़ी-केंद्रित अध्ययन को सामान्यत: सूक्ष्म-अध्ययन या घनिष्ठ-अध्ययन का पर्याय मान लिया जाता है। लेकिन सूक्ष्म-अध्ययन और एथ्नॉग्राफ़ी-आधारित अध्ययन के लक्ष्यों और उनके तरीक़ों के बीच एक स्पष्ट अंतर है जिसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जाना चाहिए। मसलन, जहाँ एथ्नॉग्राफ़ी मुख्यत: आंतरिक विचारों एवं विवेचना पर ज़ोर देती है, वहीं सूक्ष्म-अध्ययन के लिहाज़ से ये चीज़ें लाज़िमी नहीं होती।

संस्कृति और चेतना का अध्ययन करने वाले एथ्नोग्राफ़र के विपरीत सूक्ष्म अध्ययन करने वाला विद्वान् ज़मीनी स्तर पर दिखने वाली सूक्ष्म प्रक्रियाओं की व्याख्या करता है। एथ्नोग्राफ़र न केवल प्रतिभागी समीक्षक की तरह मामूली कही जाने वाली घटनाओं, आयोजनों, कार्यों एवं लोगों की अंतरक्रियाओं की समीक्षा करता है बल्कि व्यक्तिपरक तथ्यों एवं व्यक्तिगत विचारों द्वारा उनका विश्लेषण भी करता है। चूँकि एथ्नॉग्राफ़ी समाज के सूक्ष्म पहलुओं पर ज़ोर देती है इसलिए वह अध्येता को राजनीति का अभ्यंतर परखने तथा उसे जीवन के अन्य क्षेत्रों से जोड़ कर देखने के लिए प्रेरित करती है।

इसके अलावा व्यष्टि तथा समष्टिगत अध्ययन के बीच कोई ख़ास अंतर्विरोध नहीं है। सही मायने में ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। सच तो यह है कि सूक्ष्म-अध्ययन ही हमें वह निकष प्रदान करता है जिसके आधार पर यह जाँच की जा सकती है कि समष्टिगत अध्ययन से नि:सृत सामान्यीकृत तथ्यों को वास्तविक अंतर्संबंधों का परिणाम माना जाए या दो असम्बद्ध घटनाओं का बलात् समक्षीकरण। ठीक इसी तरह, इस बात की भी जाँच की जा सकती है कि सूक्ष्म-अध्ययन जिन संकल्पनाओं और

---

[3] ब्रॉनिस्लॉव मैलिनोव्स्की (1922).

13_satendra_Layout 1 6/3/2015 3:54 PM Page 215

संकेतों को महत्त्वपूर्ण मानता है, वे समष्टिगत अध्ययन के क्षेत्र में भी खरी उतरती हैं या नहीं।[4]

रैली में शामिल हुए कुछ लोगों ने बताया कि चूँकि उनके पड़ोसियों ने रैली में चलने का आग्रह किया था इसलिए वे उनकी बात नहीं टाल सकते थे। इस उदाहरण से सिद्ध होता है कि सहभागी निरीक्षण से शोधार्थी को राजनीति के विचारित और अविचारित पक्षों के अलावा विभिन्न परिस्थितियों में लोगों की उन वास्तविक गतिविधियों का ज्ञान होता है, जो अन्यथा उसकी पकड़ से बाहर रह जाती हैं।

भारत के संदर्भ में एथ्नॉग्राफ़ी समाजशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र के उद्‌भव से जुड़ी है। हमारे यहाँ स्वतंत्रता के बाद शुरुआती दशकों में स्थानीय स्तर की राजनीति एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं से संबंधित कुछेक श्रेष्ठ अध्ययनों का श्रेय एथ्नॉग्राफ़ी को ही जाता है।[5] यहाँ मैं एथ्नॉग्राफ़ी के उपागम का महत्त्व दर्शाने के लिए तीन उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूँगा। एफ.जी. बेली द्वारा किये गये स्थानीय स्तर की राजनीति के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक और सामान्य संगठनों के बीच भले ही एक सैद्धांतिक अंतर दिखता हो, लेकिन रोज़मर्रा के जीवन एवं व्यवहार में यह अंतर लक्षित कर पाना एक मुश्किल काम है।[6] इस प्रकार की संस्थाओं को पैरा-पॉलिटिकल प्रणाली का नाम दिया जाता है, जिसके अध्ययन से समाज और राजनीति के अंतर-फ़लक पर वास करने वाले कई अल्पचर्चित पहलुओं को समझने में मदद मिली है। इसी प्रकार आंद्रे बेते का तंजौर के एक गाँव पर केंद्रित अध्ययन जाति एवं वर्ग के बदलते संबंधों,राजनीति के ढर्रे तथा सत्ता के वितरण का संधान करते हुए यह दर्शाता है कि हालिया वक़्त में सत्ता जाति से मुक्त होकर पिछले समय के मुक़ाबले कहीं ज़्यादा गतिशील हो गयी है। बेते के अनुसार इस परिघटना के कारण विभिन्न जातियों के बीच सत्ता का संतुलन भी बदल गया है।[7] इस क्रम में आनंद चक्रवर्ती का शोध भी उल्लेखनीय है जिन्होंने राजस्थान के जयपुर ज़िले पर केंद्रित अपने अध्ययन में यह समझने का प्रयास किया था कि बृहत्तर राजनीतिक समाज द्वारा शुरू किये गये कार्यक्रमों—भूमि-सुधार, वयस्क मताधिकार तथा लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण ने समुदाय के राजनीतिक संबंधों को किस तरह प्रभावित किया है।[8] चक्रवर्ती

---

[4] एम.एन. श्रीनिवास (1975) : 1387-1394.

[5] देखें; एफ़.जी. बेली (1963), ए. बेते (1965), आनंद चक्रवर्ती (1975), आर.जी. फ़ॉक्स (1969), ओ.एम. लिंच (1969) तथा न्युयॉर्क.; एम.एन. श्रीनिवास (सम्पा.) (1962).

[6] एफ़.जी. बेली (1963), एफ़.जी. बेली (1969).

[7] ए. बेते (1965).

[8] आनंद चक्रवर्ती (1975).

13_satendra_Layout 1 6/3/2015 3:54 PM Page 216

का मानना था कि क्षेत्र में सामाजिक और आर्थिक बदलावों के मद्देनज़र एक तरह की 'राजनीतिक उद्यमशीलता' के साथ कुछ ऐसे नये राजनीतिक कौशलों का भी विकास हुआ जिन्होंने सीमित अर्थों में ही सही पर जाति और वर्ग के परम्परागत लाभों को कम कर दिया। ग़ौरतलब है कि दीर्घ-अवधि के गहन फ़ील्डवर्क पर आधारित इन एथ्नॉग्राफ़िक अध्ययनों से स्थानीय राजनीति की जटिलताओं का अवगाहन करने वाली एक ऐसी सामग्री सामने आयी है जो हमें यह बताती है कि गाँव या स्थानीय स्तर की राजनीति को ज़िले और राज्य-स्तरीय राजनीति के व्यापक संदर्भों से काट कर नहीं समझा जा सकता। कहना न होगा कि इस प्रकार के अध्ययनों ने हमारी समझ के सीमांतों को एक नया विस्तार दिया है।

लेकिन पिछले चार दशकों पर नज़र डालें तो हम देखते हैं कि सातवें दशक के मध्य में एथ्नॉग्राफ़िक अध्ययन की धारा क्षीण पड़ने लगी थी। इस अवधि में बेली की लीक पर चलने वाले विद्वानों की संख्या इतनी कम रही कि उन्हें ऊँगलियों पर गिना जा सकता था।[9] पिछले कुछ वर्षों के दौरान भारतीय राजनीति में पिछड़ी जातियों की बढ़ती भागीदारी पर केंद्रित एक विपुल कृतित्व सामने आया है। लेकिन इन अध्ययनों की एक साझी समस्या यह है कि उनमें लोकतांत्रिक राजनीति के प्रति समष्टिगत पद्धति का एकांगी रवैया ही अपनाया गया है। ऐसे विद्वान इने-गिने ही हैं जिन्होंने दक्षिण एशिया में लोकतंत्र के स्थानीय अनुभवों को अपनी पड़ताल का विषय बनाया है।[10] स्थानीय राजनीति के आख्यानों से सूचित इन अध्ययनों की महत्ता इस बात में निहित है कि उनसे हमें ग़ैर-अभिजात और वंचित लोगों के दैनिक जीवन और राजनीतिक संघर्षों का पता मिलता है। इस प्रकार के अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि लोकतंत्र के पश्चिम में विकसित हुए उदारतावादी सिद्धांतों को एक सामान्यीकृत तथ्य के रूप में ग्रहण करना किस क़दर ग़लत है। मसलन, एक अध्ययन में यह दिखाने का प्रयास किया है कि बच्चे को सरकारी स्कूल में भर्ती कराने या किसी विवाद में पुलिस से हस्तक्षेप की उम्मीद करने जैसे रोज़मर्रा के मामलों में भी लोगों को राज्य की शक्ति से दो-चार होना पड़ता है।[11] राजनीति की दैनंदिन चर्चा से भी अक्सर यह बात प्रकट होती है कि राज्य की एजेंसी अचानक कहीं भी और कहीं भी नमूदार हो सकती है। इसी तरह, हानसेन ने भी एथ्नॉग्राफ़ी का इस्तेमाल करते हुए अपने एक राजनीतिक अध्ययन में सोदाहरण समझाया है कि हम जिसे लोकतंत्र का मज़बूत होना मानते रहे हैं उसके गर्भ से प्राधिकार के मुख़्तलिफ़ साँचों के अलावा स्थानीय स्तर पर बाहुबली नेताओं की एक ऐसी जमात भी पैदा हुई है जो प्रतिष्ठा और जजमानी व संरक्षण के 'परम्परागत' विचारों में यक़ीन नहीं रखती। हानसेन के इस शोध से यह भी सिद्ध होता है कि उदारतावादी लोकतंत्र सदा ही एक उदार प्रजा और नागरिकता को जन्म नहीं देता।[12]

हानसेन से प्रेरित मिशेलुटी ने अपने एक हालिया अध्ययन में दिखाया है कि कर्मकाण्ड के लिहाज़ से पारम्परिक तथा आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर समझी जाने वाली यादव जाति ने राजनीति के 'देसीकरण' (वर्नाक्युलराइज़ेशन) के ज़रिये किस तरह अपनी राजनीतिक दावेदारी स्थापित की है।[13] मिशुलेटी दर्शाती हैं कि इस जाति ने ज्ञान के स्रोतों के लोक सिद्धांतों का मनुष्य और ईश्वर के संबधों की एक देशज संकल्पना से तादात्म्य करके एक ऐसा मुहावरा गढ़ा है जिससे उसके राजनीतिक नेतृत्व को

---

[9] एम.एस. रॉबिंसन (1988).

[10] देखें, एम.बनर्जी (2007), एम. सियोटी (2010), अखिल गुप्ता (1995), टी.बी. हानसेन (1999), क्रेग जेफ्री (2010), सतेंद्र कुमार (2012), सतेंद्र कुमार (2013) : 119-134, एम. मिशेलुटी (2008), पी.जी. प्राइस (2006), ए.ई. रूड (2003), ए. शाह (2007), ए.एम. शाह (सम्पा.) (2007).

[11] अखिल गुप्ता (1995): 375-402.

[12] टी.बी. हानसेन (2001).

[13] एम. मिशेलुटी (2008).

13_satendra_Layout 1 6/3/2015 3:54 PM Page 217

वैधता हासिल करने में सहूलियत मिली है। मिशुलेटी के मुताबिक़ इस प्रक्रिया के ज़रिये यादव अपने लिए लोकतंत्र का एक विशिष्ट लोक-रूप निर्मित करने में सफल रहे हैं। एक सूत्र में कहा जाए तो मिशुलेटी का शोध यह दर्शाता है कि राजनीति के जगत की लोकप्रिय धारणाएँ किस प्रकार जाति, नातेदारी, राजशाही, धर्म और राजनीति के स्थानीय मुहावरों से तय होती है।

विगत कुछ वर्षों में चुनाव और चुनावी राजनीति के एथ्नॉग्राफ़ी आधारित अध्ययनों से चुनाव-अध्ययन का अनुशासन बेहद समृद्ध हुआ है। अपने ऐसे ही एक अध्ययन में मुकुलिका बनर्जी ने उत्तरदाताओं की राजनीतिक वरीयता और सोच पर आधारित सर्वे रिसर्च से अलग हट कर यह प्रश्न पूछा कि लोग क्यों वोट देते हैं।[14] पश्चिम बंगाल के एक गाँव पर केंद्रित उनका यह अध्ययन दर्शाता है कि उक्त गाँव के मतदाता चुनाव को एक पवित्र घटना की तरह देखते हैं। ऐसे अध्ययनों की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि उनके ज़रिये न केवल राज्य, लोकतंत्र, चुनाव तथा मतदान का अभ्यंतर उजागर होता है बल्कि यह भी पता चलता है कि आम जनता अपने दैनिक जीवन में औपचारिक और अनौपचारिक राजनीति, राजनीतिक संस्थाओं तथा राजनीतिक कर्ताओं के बारे में क्या अर्थ ग्रहण करती है और उसकी किस तरह व्याख्या करती है।

मेरठ के युवाओं पर आधारित मेरे अपने शोध से उस महीन तंत्र की सूचना मिलती है जिसके तहत युवाओं को औपचारिक राजनीति में दीक्षित किया जाता है। इस अध्ययन में युवाओं की राजनीति एक पैरा-राजनीतिक प्रणाली के रूप में उभरती दिखती है। मसलन, मेरठ विश्वविद्यालय परिसर में छात्र संघ के चुनाव का आयोजन एक उत्सव के रूप में होता है जिसमें छात्र विभिन्न हितों, मंसूबों और भविष्य की योजनाओं पर काम करते हुए अपनी जातिगत और धार्मिक पहचान का मीज़ान भी बैठाते हैं। इस शोध के दौरान मैने पाया कि मेरे काम में सहायक की भूमिका निभाने वाले कुछ छात्र अलग-अलग समय और परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न व्यवहार कर रहे थे। उदाहरण के लिए ऐसे छात्र सार्वजनिक जगहों जैसे— चाय की दुकान, ढाबे तथा लाइब्रेरी में तो जाति और जातिवाद की निंदा करते थे, लेकिन जातिवादी संगठनों और सभाओं में शिरकत करते हुए उन्हें कोई नैतिक संकट नहीं घेरता था। मैंने उन्हें जाति के नेताओं, यहाँ तक कि जाति के गुण्डा नेताओं को भी चुनाव अभियान में सहयोग करते पाया। निजी बातचीत के दौरान ऐसे युवा छात्र सजातीय विवाहों को भी सही ठहराते दिखे।

यहाँ मैं अपने एक दूसरे शोध का उदाहरण पेश करना चाहूँगा। 2004-05 के दौरान मैं मेरठ ज़िले के ख़ानपुर गाँव में अन्य पिछड़े वर्गों की राजनीति और संस्कृति को समझने के लिए फ़ील्डवर्क कर रहा था। मेरे इस अध्ययन में एथ्नॉग्राफ़ी की पद्धति बेहद कारगर सिद्ध हुई।[15] 2004 के आम चुनाव के दौरान गाँव में काम करते हुए मुझे कई बार महसूस हुआ कि लोगों की बातों और उनके व्यवहार में कोई साम्य नहीं था। वे कहते कुछ और थे और करते कुछ और थे। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है। गाँव की एक चुनावी सभा में जब भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) की एक महिला नेता आयीं तो लोगों ने अपनी राजनीतिक निष्ठा और जुड़ाव से परे जा कर उनका स्वागत किया और उनकी सभा में शामिल भी हुए। इसी तरह जब मैंने कांग्रेस पार्टी के समर्थकों से सभा में जाने के संबंध में जानकारी लेनी चाही तो उन्होंने बताया कि उनका सभा में जाना गाँव का एक शिष्टाचार मात्र है, इससे अधिक कुछ नहीं। कुछ दिनों बाद मेरठ शहर में आयोजित समाजवादी पार्टी की एक अन्य रैली में गाँव के लोग फिर अपनी राजनीतिक निष्ठा को एक तरफ़ रख कर पार्टी के स्थानीय नेता याक़ूब कुरैशी को सुनते देखे गये। इसके अगले दिन गाँव के कुछ लोगों ने, जिन्हें बहुजन समाज पार्टी का पक्का समर्थक माना जाता था, बताया कि वे तो याक़ूब को देखने और सुनने गये थे।

---

[14] एम. बनर्जी (2007).

[15] सतेंद्र कुमार (2013) : 119-134.

13_satendra_Layout 1 6/3/2015 3:54 PM Page 218

इसका मतलब यह नहीं है कि वे याकूब या उनकी पार्टी को वोट भी देंगे। रैली में शामिल हुए कुछ लोगों ने बताया कि चूँकि उनके पड़ोसियों ने रैली में चलने का आग्रह किया था इसलिए वे उनकी बात नहीं टाल सकते थे। इस उदाहरण से सिद्ध होता है कि सहभागी निरीक्षण से शोधार्थी को राजनीति के विचारित और अविचारित पक्षों के अलावा विभिन्न परिस्थितियों में लोगों की उन वास्तविक गतिविधियों का ज्ञान होता है, जो अन्यथा उसकी पकड़ से बाहर रह जाती हैं। इससे यह सत्य रेखांकित होता है : यह ज़रूरी नहीं है कि लोग जो कहते हैं वैसा करते भी हों। मेरठ के युवा कहते कुछ और हैं और करते कुछ और हैं। ख़ानपुर गाँव के साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि लोग कभी-कभी कुछ काम उत्सुकतावश, बाध्यता और औपचारिकता के कारण भी करते हैं जिनका वर्तमान की घटना से संबंध नहीं होता। मसलन, गाँव के लोग मेरठ की उस चुनावी रैली में इसलिए शामिल हुए, क्योंकि यह उनके लिए एक तरह की बाध्यता थी। इसलिए शोध की दृष्टि से लोगों का 'पर्यवेक्षण' करना और उन्हें 'सुनना' ही पर्याप्त नहीं होता बल्कि यह अन्वीक्षण करना भी ज़रूरी होता है कि लोग अलग-अलग परिस्थितियों में कैसा व्यवहार करते हैं। इसके अलावा ऐसे अध्ययनों से एक अंतदृष्टि यह भी मिलती है कि लोगों के राजनीतिक व्यवहार को समझने के लिए उनके जीवन के ग़ैर-राजनीतिक पहलुओं पर ध्यान देना बेहद ज़रूरी है। इस तरह राजनीति की जटिल प्रक्रियाओं तथा उनके आशयों के अर्थ-निर्धारण में एथ्नॉग्राफ़ी एक अत्यंत प्रभावशाली माध्यम के रूप में उभरती है। शोधकर्ता को एथ्नॉग्राफ़ी से एक ख़ास सहूलियत यह मिलती है कि वह राजनीति के अध्ययन में सूक्ष्म-स्तर के ब्योरों का संबंध बृहत्तर दुनिया के साथ जोड़ कर एक ज़्यादा समग्र छवि प्रस्तुत कर सकता है।

लेकिन एथ्नॉग्राफ़ीय शोध की एक बड़ी सीमा यह है कि इसके आधार पर सामान्यीकृत निष्कर्षों तक नहीं पहुँचा जा सकता क्योंकि एक पद्धति के तौर पर एथ्नॉग्राफ़ी विस्तार के बजाय गहराई को ज़्यादा महत्त्व देती है। फिर भी, राजनीतिक प्रक्रियाओं, उनके निहितार्थों से संबंधित प्रश्नों तथा विमर्शों की सही समझ विकसित करने के लिए हम जिन पद्धतियों का इस्तेमाल करते हैं उनके मुक़ाबले एथ्नॉग्राफ़ी एक ज़्यादा सम्भावनाशील अनुशासन है। मात्रात्मक सर्वेक्षण पद्धति के योग से इस पद्धति को और मज़बूत बनाया जा सकता है। हमें यह समझने की ज़रूरत है कि शोध पद्धतियों के रूप में मात्रात्मक सर्वेक्षण पद्धति और एथ्नॉग्राफ़ी एक दूसरे की विरोधी या प्रतियोगी नहीं हैं। वस्तुत: विशेष रूप से ग्रामीण अध्ययन के क्षेत्र में हाउसहोल्ड सर्वेक्षण एथ्नॉग्राफ़ी शोध का अभिन्न अंग रहा है। चुनावों के पूर्वोक्त तुलनात्मक अध्ययन के क्रम में बारह मतदान केंद्रों के ब्योरों को एथ्नॉग्राफ़ी और मात्रात्मक सर्वेक्षणों के ज़रिये एकीकृत करने का प्रयास किया है।[16] एथ्नॉग्राफ़ी के अध्येता इस ग्रंथि से ग्रस्त रहते हैं कि मात्रात्मक और गुणात्मक पद्धतियों के बीच एक अंतर्निहित असंगति होती है। अगर वे इस कल्पित हौवे से मुक्त हो जाएँ तो इन पद्धतियों का एक दूसरे के पूरक के तौर पर उपयोग किया जा सकता है। राजनीतिक एथ्नॉग्राफ़र एक गाँव अथवा सीमित क्षेत्र के बदले राजनीतिक और प्रशासनिक इकाइयों जैसे— मतदान केंद्र, पंचायत, ब्लॉक अथवा ज़िला पंचायत को अध्ययन का विषय बना कर इस पद्धति को अद्यतन बना सकते हैं। संक्षेप में कहें तो राजनीति की परिघटनाओं को समझने के लिए पद्धतियों के संकरण और उपागमों की बहुलता पर ध्यान देना ज़रूरी हो गया है।[17]

हाल के मानवशास्त्रीय अध्ययन हमें इस बात का स्मरण कराते हैं कि एथनॉग्राफ़ी को उसके साम्राज्यवादी इतिहास से मुक्त कराने की ज़रूरत है। राजनीतिक अध्ययन की एक उपयोगी पद्धति

---

[16] इस शीघ्र प्रकाश्य अध्ययन में चुनावों को मात्र सांख्यकीय परिघटना या आँकड़ों की क़वायद मानने के बजाय उनके प्रति एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण अपनाया गया है. लेखिका चुनावों को भारतीय लोकतंत्र के सेकलुर और आधुनिक उत्सवों की तरह देखती हैं.

[17] सुहास पलशीकर (2010).

13_satendra_Layout 1 6/3/2015 3:54 PM Page 219

पिछले कुछ वर्षों के दौरान भारतीय राजनीति में पिछड़ी जातियों की बढ़ती भागीदारी पर केंद्रित एक विपुल कृतित्व सामने आया है। लेकिन इन अध्ययनों की एक साझी समस्या यह है कि उनमें लोकतांत्रिक राजनीति के प्रति समष्टिगत पद्धति का एकांगी रवैया ही अपनाया गया है। ऐसे विद्वान इने-गिने ही हैं जिन्होंने दक्षिण एशिया में लोकतंत्र के स्थानीय अनुभवों को अपनी पड़ताल का विषय बनाया है।

बनने के लिए यह उसके लिए एक आवश्यक पात्रता है। शोधार्थियों की नयी पीढ़ी अब वर्चस्वी सत्ता और एथ्नॉग्राफ़ी के सह-संबंध को प्रश्नांकित करने लगी है। उसने मानकीय एथ्नॉग्राफ़ी के इस दावे को ख़ारिज कर दिया है कि वह हर ब्योरे को सम्पूर्णता में जानती है।[18] एथ्नॉग्राफ़ी का उत्तर-आधुनिक संस्करण हमें बंद समुदायों के प्रति सावधान करते हुए अध्येताओं से आग्रह करता है कि अब उन जगहों का संधान किया जाए जहाँ क़िस्म-क़िस्म के विचारों और प्रभावों की गहमा-गहमी चलती रहती है। हाल के अध्ययनों में स्थानिक संदर्भों तथा प्रतिनिधित्व की राजनीति और उसके अर्थ को महत्त्व दिया जा रहा है।[19] ऐसे अध्ययनों की बदौलत एक क्रिटिकल, स्थानिक या राजनीतिक एथ्नॉग्राफ़ी की ऐसी ज़मीन तैयार हुई है, जिस पर खड़े होकर मानकीय एथ्नॉग्राफ़ी के पूर्वग्रहों को चुनौती दी जा सकती है। अत: निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि एथ्नॉग्राफ़ी राजनीतिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं के सूक्ष्म अध्ययन लिए पूरी तरह सक्षम है, किंतु राजनीति की गहरी समझ विकसित करने के लिए हमें शायद पद्धतियों के संकर-रूपों की ज़्यादा दरकार होगी।

संदर्भ :

अखिल गुप्ता (1995), 'ब्लर्ड बाउंड्रीज़ : द डिस्कॉर्स ऑफ़ करप्शन, द कल्चर ऑफ़ पॉलिटिक्स ऐंड द इमैजिण्ड स्टेट', *अमेरिकन एथ्नॉलोज़िस्ट, 22 (2).*

अनिरुद्ध कृष्ण (2003), 'व्हाट इज़ हैपनिंग टू कास्ट? अ व्यू फ्रॉम सम नॉर्थ इण्डियन विलेजिज', *जर्नल ऑफ़ एशियन स्टडीज़,* 62 (4).

[18] देखें, ज्यॉर्ज ई. मार्कस (1986), ज्यॉर्ज ई. मार्कस (1998), मिशेल-रॉल्फ़ त्रोइलो (2003).

[19] मिशेल-रॉल्फ़ त्रोइलो (2003) : 125

13_satendra_Layout 1 6/3/2015 3:54 PM Page 220

आनंद चक्रवर्ती (1975), *कंट्राडिक्शन ऐंड चेंज : एमर्जिंग पैटर्न्स ऑफ़ अथॉरिटी इन अ राजस्थान विलेज,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

आर.जी. फ़ॉक्स (1969), *फ्रॉम ज़मींदार टू बैलेट बॉक्स : कम्युनिटी चेंज इन अ नॉर्थ इण्डियन मार्केट टाउन,* कॉर्नेल युनिवर्सिटी प्रेस, इथाका.

ओ.एम. लिंच (1969), *द पॉलिटिक्स ऑफ़ अनटचेबिलिटी : सोशल मॉबिलिटी ऐंड सोशल चेंज इ अ सिटी ऑफ़ इण्डिया,* कोलम्बिया युनिवर्सिटी, लंदन तथा न्युयॉर्क.

ए.ई. रूड (2003), *पॉएटिक्स ऑफ़ विलेज पॉलिटिक्स : द मेकिंग ऑफ़ वेस्ट बंगाल्स कम्युनिज़म,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

एफ़.जी. बेली (1963), *पॉलिटिक्स ऐंड सोशल चेंज : ओड़ीशा इन 1949,* युनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, बर्कले.

——————— (1969), *स्ट्रैटजम्स ऐंड स्पॉयल्स,* बेसिल ब्लैकवैल, ऑक्सफ़र्ड.

——————— (2014), *व्हाय इण्डिया वोट्स ?,* रौटलेज, नयी दिल्ली.

एम.बनर्जी (2007), 'सैक्रेड इलेक्शंस', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* 42 (17).

ए. बेते (1965), *कास्ट, क्लास ऐंड पॉवर : चेंजिंग पैटर्न्स ऑफ़ सोशल स्ट्रैटिफ़िकेशन इन अ तंजौर विलेज,* युनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, बर्कले.

एम. मिशेलुटी (2008), *द वर्नाक्युलराईज़ेशन ऑफ़ डेमॉक्रैसी : पॉलिटिक्स, कास्ट ऐंड रिलीजन इन इण्डिया,* रॉटलेज, नयी दिल्ली.

एम.एन. श्रीनिवास (सम्पा.) (1962), *कास्ट इन मॉडर्न इण्डिया ऐंड अदर एसेज़,* मीडिया प्रोमोटर्स ऐंड पब्लिशर्स, बॉम्बे.

——————— (1975), 'विलेज स्टडीज़, पार्टिसिपेंट ऑब्जर्वेशन ऐंड सोशल साइंस रिसर्च इन इण्डिया', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली ऑफ़ इण्डिया, 10 (33-35).*

ए.एम. शाह (सम्पा.), (2007), *द ग्रासरूट्स ऑफ़ डेमॉक्रैसी : फ़ील्ड स्टडीज़ ऑफ़ इण्डियन इलेक्शंस,* पर्मानेंट ब्लैक, नयी दिल्ली.

एम.एस. रॉबिंसन (1988), *लोकल पॉलिटिक्स : द लॉ ऑफ़ फ़िशिज़ : डिवेल्पमेंट थ्रू पॉलिटिकल चेंज इन मेडक डिस्ट्रिक्ट, आंध्र प्रदेश (साउथ इण्डिया),* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

ए. शाह (2007), 'कीपिंग द स्टेट अवे' : डेमॉक्रैसी, पॉलिटिक्स ऐंड द स्टेट इन इण्डियाज़ झारखण्ड', *जर्नल ऑफ़ रॉयल एंथ्रॉपॉलोजिकल इंस्टीट्यूट (एनएस),* 13 (1).

एम. सियोटी (2010), *रेट्रो-मॉडर्न इण्डिया : फ़ोर्जिंग द लो-कास्ट सेल्फ़* , रौटलेज, नयी दिल्ली तथा लंदन.

क्रेग जेफ़्री (2010), *टाइमपास : यूथ, क्लास ऐंड द पॉलिटिक्स ऑफ़ वेटिंग इन इण्डिया,* स्टैनफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, स्टैनफ़र्ड.

ज्यॉर्ज ई. मार्कस (1986), 'कंटेम्परेरी प्रॉब्लम्ज़ ऑफ़ एथ्नॉग्राफ़ी इन द मॉडर्न वर्ल्ड सिस्टम', क्लिफ़र्ड जेम्स तथा ज्यॉर्ज ई. मार्कस (सम्पा.), *राइटिंग कल्चर : द पॉएटिक्स ऑफ़ एथ्नॉग्राफ़ी,* युनिवर्सिटी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया प्रेस, कैलिफ़ोर्निया.

——————— (1998), *एथ्नॉग्राफ़ी थ्रू थिक ऐंड थिन,* प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस, न्यु जर्सी.

टी.बी. हानसेन (1999), *द सैफ़्रन वेव : डेमाक्रैसी ऐंड हिंदू नैशनलिज़म इन मॉडर्न इण्डिया,* प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन, एनजे.

——————— (2001), *द वेजेज़ ऑफ़ वायलेंस : नेमिंग ऐंड आइडेंटिटी इन पोस्ट-कोलोनियल बॉम्बे,* प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन.

पी.जी. प्राइस (2006), 'चेंजिंग मीनिंग्स ऑफ़ अथॉरिटी इन कंटेम्परेरी रूरल इण्डिया', *क्वालिटेटिव सोसियोलॅजी,* 29 (3).

पी. ब्रास (1978), *लैंग्वेज, रिलीजन ऐंड पॉलिटिक्स इन नॉर्थ इण्डिया,* केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन.

——— (1985), *कास्ट, फ़ैक्शन ऐंड पार्टी इन इण्डियन पॉलिटिक्स,* खण्ड 2 : इलेक्शन स्टडीज़, चाणक्य पब्लिशर्स, नयी दिल्ली.

——— (1997), *थेफ़्ट ऑफ़ एन आयडॉल : टेक्स्ट ऐंड कंटेक्स्ट इन द रिप्रेज़ेंटेशन ऑफ़ कलेक्टिव वायलेंस,*

13_satendra_Layout 1 6/3/2015 3:54 PM Page 221

प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन.

ब्रॉनिस्लॉव मैलिनोव्स्की (1922), *अर्गोनॉट्स ऑफ़ द वेस्टर्न पैसिफ़िक,* ज्यॉर्ज रॉटलेज़, लंदन.

मायरॉन वीनर (1978), *इण्डिया एट द पॉल्स : द पार्लियामेंटरी इलेक्शंस ऑफ़ 1977,* अमेरिकन इंटरप्राइज़ इंस्टीट्यूट फ़ॉर पब्लिक पॉलिसी रिसर्च, वाशिंगटन, डीसी.

मिशेल-रॉल्फ़ त्रोइलो (2003), *ग्लोबल ट्रांसफ़ॉर्मेशंस : एंथ्रॉपॉलॅजी ऐंड द मॉडर्न वर्ल्ड,* पालग्रेव-मैकमिलन, न्युयॉर्क.

सतेंद्र कुमार (2012), 'एथ्नॉग्राफ़ी ऑफ़ यूथ पॉलिटिक्स : लीडर्स, ब्रोकर्स ऐंड मौरैलिटी इन अ प्रोविंसियल युनिवर्सिटी, नॉर्थ इण्डिया', *हिस्ट्री ऐंड सोसियोलॅजी ऑफ़ साउथ एशिया 6 (1).*

———— (2013), 'इंक्लूज़न ऑफ़ द एक्सक्लूडिड ग्रुप्स थ्रू द पंचायती राज : इलेक्टोरल डेमॉक्रैसी इन उत्तर प्रदेश', स्कोडा, उवे, नीलसन, कैनेथ बो तथा फ़िबिगर (सम्पा.), *नेविगेटिंग एक्सक्लूज़न, इंजीनियरिंग इनक्लूज़न : इण्डियन सोशल प्रोसैसिज़,* एंथम प्रेस, लंदन.

सुहास पलशीकर (2010), 'इलेक्शन स्टडीज़ ऐंड मैथॉडॉलिजिकल प्लूरैलिटी', लोकनीति-*न्यूज़ लैटर,* http://www.lokniti.org/editorial_september2010.html.